International Journal in Management and Social Science
Volume 09 Issue 11, November 2021 ISSN: 2321-1784 Impact Factor: 7.088
Journal Homepage: http://ijmr.net.in, Email: irjmss@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal

कबीरदास की सामाजिक चेतना और सामाजिक प्रतिबद्धता का अध्ययन

शीतल सोनी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, द ग्लोकल यूनिवर्सिटी, सहारनपुर, उ. प्र.
डॉ कामिल
प्रोफेसर,हिंदी सुपरवाइजर, द ग्लोकल यूनिवर्सिटी, सहारनपुर, उ. प्र.

सारांश

कबीरदास का काव्य समाज को परिवर्तित करने का पूराअभियान हैं। यही नहीं कबीर का काव्य–शरद का आकाश भी है और सान पर चढ़ा शस्त्र भीहैं। कबीर एक महान सन्त कवि, समाज सुधारक, रहस्यवादी और सामाजिक विद्रोह के कविमाने गये हैं।। कबीर के काव्य में एक ओर इतनी तड़प और इतना अकेलापन है और ऐसीमस्ती का ज्वार, है सारी सृष्टि को समेटता चला जाता हैं।भक्तिकाल को स्वर्णकाल का महत्व जिन कवियों के कारण है उनमे कबीर एक हैं। वे जन्म जात विद्रोही और क्रान्ति के अग्रदूत हैं। उनके निर्माण में युगीन परिवेश महत्वपूर्ण रहा। एक जाज्वल्यमान नक्षत्र, अंध परम्परा को नकारने वाले, क्रान्ति की दुहाई देने वाले, दलितों के, पीड़ितों के कवि, धर्म, परम्परा, समाज संस्कृति का विरोध करने वाले, जिन्होंने कथनी औरकरनी में समानता दिखायी हैं। उनके काव्य में जीवन के अनुभूत सत्य हैं। महान विश्व केकिसी भी साहित्यकार से कबीर की तुलना नहीं हो सकती। उन्होंने मानवता को सिंहासन परआरूढ़ किया। उनका काव्य मनुष्य से मनुष्य को जोड़ने वाला मार्मिक सूत्र हैं। अनगढ़िया देवकी सेवा ही संसार की सर्वश्रेष्ठ भक्ति हैं। यही भक्ति सामाजिक संतुलन, संयम, सौदार्य तथाअनुद्वेगशोल चेतना का ही दूसरा नाम हैं। कबीर का विरह केवल आराध्य तक पहुंचना नहीं हैबल्कि मन की, शरीर की सम्पूर्ण विकृतियों को दूर करना हैं। कबीर का प्रेम उस युग के लिएही नहीं आज के लिए भी आवश्यक हैं। उनके मत से जिसके हृदय में प्रेम नहीं उसका इससंसार में आना व्यर्थ हैं। मानव जीवन की सार्थकता प्रेम में ही हैं।

मुख्यशब्दकबीरदास,सामाजिक चेतना,सामाजिक प्रतिबद्धता,सामाजिक विद्रोह,सामाजिक संतुलन

प्रस्तावना

कबीर के अनुसार वास्तव में व्यक्ति वही है जो सामाजिक साम्य, स्थापना हेतु अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दे। द्रष्टव्य है– तन मन सीस समरपन कीन्हां, प्रगत जोति तंह आतम लीनां।२इसके अतिरिक्त कबीर ने व्यक्ति के आदर्श के रूप में निस्पृहता अहंकारहीनता एवं निर्विषयता इत्यादि के महात्म्य का उल्लेख किया है। देखिए – निरवेरी निहः कांमता, सांई सेती नेह।/विषिया सू न्यारा रहे, संतनि का अंग एह॥३सिद्धान्ततः नारी को व्यक्ति से इतर नहीं माना जाना चाहिए, परन्तु व्यवहार में नारी का विषय पृथक रूप से ही विचारणीय होता है। उल्लेखनीय है कि कबीर की नारी निन्दा सर्वविदित है परन्तु उसी के साथ सीमित संदर्भों में समाज में उनकी आदर्श नारी संबंधी विचारधारा के भी दर्शन होते हैं। वह नारी के लिए त्याग, निष्ठा, पतिव्रत एवं सतीत्व की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं कि उसे अपने पति के लिए जो कि उसके प्रेम का आधार होता है सब कुछ अर्पित कर देना चाहिए। यथा दृ इस मन का दीया करों, धरती मैल्यूं जीव।/लोही सींचो तेज ज्यूं, चित दैखौं तित पीव॥४ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि कबीर जैसा विद्रोही कवि नारी समाज के प्रति समाज के अन्य अंगों जैसे स्वस्थ मानसिकता नहीं रखता है, परन्तु उपर्युक्त संदर्भ के माध्यम से भारतीय समाज के पारिवारिक संबंधों में पति–पत्नी के संबंधों की पवित्राता का स्वरूप अवश्य सामने आ जाता है।

विद्या ग्रहण करने वाला विद्यार्थी कहलाता है। समाज में विद्यार्थी की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। विद्यार्थी समाज का वह आवश्यक अंग हैं जो भविष्य के समाज की रूपरेखा का नियन्ता होता है। यद्यपि वर्तमान में विद्या और विद्यार्थी दोनों से संबंधित मान्यताएँ बदल चुकी हैं, परन्तु मध्यकाल तक शिक्षा के मूल उद्देश्यों में से एक एवं मुख्य उद्देश्य अध्यात्म और मानवानुकूल श्रेष्ठ गुणों का विकास था। गुरु एवं शिष्य संबंध सभी मानवीय संबंधों से उच्च एवं पवित्रा माने गये। कबीर तो इस संबंध की श्रेष्ठता के प्रबल समर्थक के रूप में सामने आते हैं। यथा दृ सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार।/लोचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त

दिखावणहार।५विद्यार्थी को सातात्त्विक गुरु प्राप्त करने के लिए अपना सम्पूर्ण अर्पित कर देने की बात करते हुए कबीर कहते हैं कि दृ मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।/ तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे है मेरा॥६कबीर ने गुरु शिष्य दोनों के लिए श्रेष्ठता स्वनियंत्रण समदशिता एवं आत्म नियंत्रण को आवश्यक मानते हुए समाज के सर्व कल्याण के लिए सहायक माना है।यद्यपि साम्प्रदायिकता का जो भयावह स्वरूप समसामयिक संदर्भों में दृष्टिगत होता है वह आधुनिक युग का रूप है।

मध्यकाल में साम्प्रदायिक वैमनस्व कारण साम्प्रदायिक श्रेष्ठता की होड़ की मानसिकता पर आधारित थी। वह कभी तो दो धर्मों के मध्य की होड़ के कारण दृष्टिगत होती थी तो कभी एक ही धर्म के विविध सम्प्रदायों के मध्य दिखाई देती थी। कबीर समाज में साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने के क्रम में उभय धर्मों की आलोचना में मुखर हो उठते हैं। यथा दृ जोर खुदाय मसीति बसत है, और मुलिक किस केरा।/तीरथ मूरति राम निवासा, दुहु मैं किनहू न हेरा॥७साम्प्रदायिक साम्य की भावना से संचालित कबीर साहित्य में अनेक दोहे और पद देखे जा सकते हैं। जो समाज में एकता एवं भाईचारे के लिए मार्ग प्रशस्त करने में सहायक सिद्ध होत प्रतीत होते हैं। इसी भावना के समानातर वर्ण व्यवस्था के परिणाम स्वरूप समाज में उपजी अस्पृश्यता का विरोध कबीर द्वारा प्रस्तुत साम्यवादी समाज के संदर्भों की महती विशेषता है।समाज के विकास की प्रमुख बाँधाओं में आर्थिक वैषम्य के प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। कबीर आर्थिक विषमता के मूल धन संचय एवं वैभवपूर्ण जीवन पर कुठाराघात करते हुए कहते हैं दृ कबीर सो धन संचिये, जो आगे कूं होइ।/ सीस चढ़ाये पोठली, ले जात न देख्या कोइ॥८वास्तविक धन का संकेत करते हुए कबीर कहते हैं कि दृ निरधन सरधन दोनों भाई प्रभु की कला न मेरी जाई।/कहि कबीर निरधन है सांइ जाके हिदये नाम न होईकबीर की मान्यता है कि धन संचय अध्यात्म और समाज दोनों के विरूद्ध है। यही कारण है कि वह आर्थिक वैषम्य के स्थान पर साम्य स्थापित करने के आकांक्षी रूप में सामने आते हैं।

International Journal in Management and Social Science
Volume 09 Issue 11, November 2021 ISSN: 2321-1784 Impact Factor: 7.088
Journal Homepage: http://ijmr.net.in, Email: irjmss@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal

कबीरदास की सामाजिक चतना

संत कबीरदास का भारतीय समाज तथा संत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। मध्यकाल भारत में अनेक समस्याएं जड़ जमा चुकी थी। धार्मिक रूढ़िया,अंधविश्वास, ऊँच–नीच, वर्ण व्यवस्था, हिंदू मुस्लिम झगड़े, अपनी चरम सीमा पर थे ऐसे समय में कबीर का जन्म हुआ। संत कबीरदास जो के समय भारत की राजनीतिक, सामाजिक,अर्थिक एंव धार्मिक शोचनीय थी। एक तरफ जनता मस्लमान शासकों धर्मान्धता से दुखी थी तो दसरी ओर हिंदु धर्म के कर्मकांड और पाखंड का पतन हो रहा था।

संत कबीर उस समय अवतरित हुए जब मध्यकाल घोर निराशा एंव अधंकार से घिरा हुआ था। छुआछूत, रुढ़िवादिता का बोला बाला था, और हिंदु मुस्लिम आपस में दंगा फसाद करते रहते थे। कबीर ने इन सभी सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। आचार्य द्विवेदी ने बहुत बल देकर कहा है–

"कबीरदास जी का भक्त रूप ही उनका वास्तविक रूप था। इसी कन्द्र के इर्द गिर्द उनके अन्य रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे है ।वे कभी सुधार करने के फेर मे नही पड़े । शायद वे अनुभव कर चुके थे कि जो स्वयं सुधारना नहीं चाहता उसे जबरदस्ती सुधारने का प्रयास व्यर्थ का प्रयास है।"

कबीर ने धार्मिक पांखड़ो, सामाजिक कुरीतियों, अनाचारों, पारस्परिक विरोधों आदि को दूर करने की अपूर्व शक्ति है। उसमें समाज के अन्तर्गत, क्रांति उत्पन्न करने की अद्भुत क्षमता है और उसमें चित्तवृतियों को परिमार्जित करके हद्वय को उदार बनाने की अनुपम साम्थर्य है।
इस प्रकार कबीर का साहित्य जीवन को उन्नत बनाने वाला है, मानवतावाद का पोषक है, विश्वबंधुत्व की भावना को जाग्रत करने वाला है, विश्व प्रेम का प्रचारक है, पारस्परिक भेदभाव को मिटाने वाला है, तथा प्राणिमात्र में प्रेम का संचार करने वाला है। इसलिए कबीर अन्य सन्तों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रसिद्ध है वे एक महान साधक है, उच्चकोटि के सुधारक है,

निर्गुण भक्ति के प्रबल प्रचारक है तथा हिंदी संतकाव्य के प्रतिनिधि कवि है। इसी कारण हिन्दी की संत काव्यधारा में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

जोगी गोरख–गोरख करैं, हिन्दू राम–नाम उच्चारैं।

मुसलमान कहैं एक खुदाई, कबीर को स्वामी, घट–घट बसाई।

भक्ति काल के कवियों में कबीर का स्थान सर्वोच्च है। कबीर के क्रांतिकारी विचारों का संकलन बीजक में किया गया है। कबीर मूल रूप से निर्गुण भक्ति धारा के अनुयाई रहे हैं। अरबी भाषा में कबीर का अर्थ है महान। उन्होंने अपनी लेखनी का प्रयोग करके विभिन्न सामाजिक सुधार करने का प्रयत्न किया समाज में फैले आडंबर, मिथ्या, पाखंड और कर्मकांड का विरोध किया। कबीर का काल भारतीय समाज में सामंतवाद का उत्कृष काल था। कबीर का उद्देश्य सिर्फ बुराई ढूंढ कर वर्णन तक सिमित नहीं था अपितु नए आदर्श और व्यावहारिक मापदंड स्थापित करना भी था।

महात्मा कबीर उन लोगों में से नहीं थे जो ठाठ बाठ से रहकर और सुविधाओं का उपभोग करके उपदेश देते थे, यथार्थ में तो महात्मा कबीर उन सब कुरीतियों के पाट में पीस चुके थे जिनका उन्होंने विरोध किया है, यानी वो स्वयं भुक्त भोगी रहे है। मानव ही श्रेष्ठ पूजा है इसके लिए महात्मा ने कहा है "जीवत पितर ना मने कोई, मुये शरद करहि" जीवित व्यक्ति की तो तुम दुर्गति करते हो और मरने के बाद उसका श्राद्ध करवाना कहा तक उचित है ?

कबीर के समय का समाज भी छुआछूत, भेदभाव, पंडितवाद, पाखण्ड और रूढ़िवाद के चरम पर था। जो लोग साधन संपन्न थे उन्हें गरीबों के प्रति लापरवाह थे। सामाजिक सुरक्षा नाम की कोई विचार धारा ही नहीं थी। आमिर लोग जीवन के मजे लूट रहे थे और गरीब लोगों को दो वक्त की रोटी कमाने में भी हजार यत्न करने पड़ रहे थे। ऊपर से पंडितवाद ने उनकी कमर तोड़ रही थी। उन्हें हर कदम पर ईश्वर का डर दिखाकर आर्थिक और मानसिक रूप से लूटा जाता था।

कबीर ने ना केवल हिन्दू धर्म बल्कि मुस्लिम धर्म में फैले पाखण्ड और धर्म के नाम पर लूट को लोगों को सबके सामने रखा। मुझे तो आशर्य होता है उनके साहस पर, देखिये आज के समय में भी कोई उनके जिताना कटु सत्य नहीं बोल सकता है, सही मायने में "सत्य " कहने के लिए पहले "कबीर " बनना पड़ता है। ये भी सत्य है की कबीर की प्रतिभा को समकालिक समाज और आज के समाज, दोनों के द्वारा ही दबा दिया गया है।

संत कबीर की सामाजिक प्रतिबद्धता

भक्ति काल में विविध प्रकार के स्वार्थी, लोभी, कामी लोग योगी–संन्यासी का वेष धारण किये उसे उदर पूर्ति का साधन बनाए घूमते दृष्टिगोचर होते थे। कबीर ने निर्भीक होकर उनके पाखंड पर प्रहार किया। सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त मिथ्याचारों की धज्जियां उड़ा दीं। इस तीव्रालोचना में उन्होंने हिंदू–मुसलमान किसी को भी न बख्शा। एक न भूला दोह न भूला, भूला सब संसारा। एक न भूला दास कबीरा, जाके राम अधारा।।

मध्यकाल के तिमिराच्छन्न परिवेश में ज्ञान–दीप लेकर अवतरित होने वाले, भूली भटकी जनता के उचित पथ–प्रदर्शक एवं सम्बल प्रदान करने वाले कबीर क्रांतिदर्शी तथा आत्म–ज्ञानी संत थे। हृदय से निरूसृत भाव–विचार ही हृदय तक प्रेषित हो पाते हैं। यही कारण है उनकी वाणी के जन–ग्राह्य होने का।

बाह्य–जगत ने कबीर–काव्य को मुख्यतरू दो धाराएं प्रदान कीं। प्रथम समाज की कुरीतियों और आडम्बरों पर तीव्र प्रहार, खंडन–मंडन द्वारा सत्य –तत्व का उद्घाटन एवं द्वितीय वह जिसकी खोज में सृष्टि का कण–कण आकुल–व्याकुल है। कबीर दास ने तत्कालीन धार्मिक पाखंड एवं कुरीतियों एवं पारस्परिक विरोध के उन्मूलन का स्तुत्य प्रयास किया है। उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता ही कविता का रूप धारण कर लती है। कबीर की कविता भक्त कवियों की विनयशीलता तथा आत्म–भर्त्सना के बीच धार्मिक और सामाजिक जीवन की पक्षपात रहित विवेचना है।

कबीर दास की प्रातिभ ज्योति, योग, तंत्र, भक्ति के आध्यात्मिक क्षेत्रों में ही नहीं, अपितु, मानव–जीवन के व्यावहारिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में भी प्रकाशित हुई। उनकी गहन तीक्ष्ण दृ ष्टि ने धर्म, अध्यात्म एवं साधनों के गूढ़ तत्वों का सम्यक रीति से निरीक्षण किया, उन्हें अनुभूति का विषय बनाया, उनकी सूक्ष्म दृष्टि धर्म–साधना एवं लोक–व्यवहार के उन बाह्य रूपों पर भी पड़ी, जो अंधविश्वास, रूढ़ि एवं पाखंड से ग्रस्त थे।

ऊंच–नीच, जाति–पांति के भेदों ने सामाजिक व्यवस्था की नींव ही हिला दी थी तथा हिंदू और मुसलमान मिथ्याभिमान में सत्य से दूर होते जा रहे थे। ऐसे समय में सुन्न समाधि लगाने वाले, श्उन्मन चढ़ा गगन रस पीवैश की स्थिति को प्राप्त फक्कड़ कबीर ने समाज के पाखड, मिथ्या बाह्यचार एवं बुराइयों के विरूद्ध विद्रोह का निर्भीक स्वर ऊंचा किया और पुकार मचाई कि–

'जो कबीर धर जालै आपना, सो चलै हमारे साथ।'

कबीर का सामाजिक व्यक्तित्व, उनका सुधारक व्यक्तित्व एकान्त साधना द्वारा स्वयं का सुख भोगने तक सीमित नहीं था अपितु, श्सर्वे भवन्तु सुखिनरू, सर्वे भवन्तु निरामयाश की भांति प्राणि मात्र के दुरूख दूर करने में अपने जीवन की सार्थकता मानते हैं। सामाजिक वैषम्य एवं विसंगतियों का विरोध करते हुए समाज के कोप का भाजन बनते हैं। कबीर के व्यक्तित्व का यह सुधारक पक्ष–सामाजिक प्रतिबद्धता का पक्ष कुछ एसा ही विलक्षण है। व्यक्तिगत साधना का चरम आदर्श एवं सामाजिक चेतना की व्यापकता–दोनों का सुखद समन्वय कबीर की साधना का वैष्टिय है और यही विष्टिता उन्हें संत की कोटि में रखती है।

भक्ति काल में विविध प्रकार के स्वार्थी, लोभी, कामी लोग योगी–संन्यासी का वेष धारण किये उसे उदर पूर्ति का साधन बनाए घूमते दृष्टिगोचर होते थे। कबीर ने निर्भीक होकर उनके पाखंड पर प्रहार किया। सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त मिथ्याचारों की धज्जियां उड़ा दीं। इस तीव्रालोचना में उन्होंने हिंदू–मुसलमान किसी को भी न बख्शा ।

एक न भूला दोह न भूला, भूला सब संसारा।

एक न भूला दास कबीरा, जाके राम अधारा।।

षट् कर्मों का जंजाल करते फिरो, मन में विकार भरे हों तो इन सब आडम्बरों से क्या लाभ?

अरू भेले षट् दर्शन भाई। पाखंड भेस रहे लपटाई।।

पंडित भूले पढ़ि गुन्य वेदा। आप न पावे नानां भेदा।।

संध्या तरपन अरू षट् करमां। लागि रहे इनके आशरमां ।।

ब्राह्मणों ने जन्म के आधार पर ही, चाहे आचरण कितना ही निम्न क्यों न हो, अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित कर रखी थी। एक बिन्दु से निर्मित पंचतत्व युक्त मानव–शरीर सबका निर्माता एक ही ब्रह्म रूपी कुम्भकार, तो फिर जन्म के आधार पर यह भेद कैसा? इसीलिए उन्होंने ब्राह्मणों को ललकारा।

जो तू बाम्हन, बाम्हनी जाया।

आन बाट द्वै क्यों नहिं आया।।

कबीर ने हिंदूओं की मूर्तिपूजा की खिल्ली उड़ाई है–

हम भी पाहन पूजते, होते बन के रोज।

सतगुरु की किरपा भई, डार्या सिर थै बोझ।।

कबीर दास क युग में हिंदू जनता मूर्तियों की असमर्थता को देख चुकी थी। आक्रमणकारियों द्वारा मूर्ति–भंजन किये जाने पर न तो पुजारी कुछ कर सके थे और न मूर्ति में छिपे देव। मूर्ति–पूजा के नाम पर पंडे–पुजारी भी निजी स्वार्थ–पूर्ति में रत थे। तत्कालीन परिवेश में मूर्ति–प्जा के विरूद्ध वातावरण तो निर्मित था ही, कबीर ने निर्भयता से इसका खंडन किया तथा पंडे–पुजारियों की ठग–विद्या से जनता को सावधान किया। सामाजिक विश्रृंखलता के इस युग में ब्राह्मण–वर्ग अपने ज्ञान एवं सदाचरण की उच्चता को खोकर मात्र ब्राह्मण जाति में जन्म लेने के कारण अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित कर रखी थी। यूं तो बौद्ध–काल से ही ब्राह्मण विरोध आरम्भ हो गया था, जो सिद्धों, सहजयानियों एवं नाथ पंथियों से होता हुआ कबीर तक आया था। तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों ने भी इस विरोध हेतु भूमि तैयार कर दी थी। निम्न जातियो में सिद्ध, नाथ एवं संत उत्पन्न हो रहे थे, जो ब्राह्मण वर्ग की जातीय उच्चता को चुनौती दे रहे थे। कबीर दास ने जाति गत भेद–भाव को, ऊंच–नीच को जन्मगत मानने का विरोध किया है। मनुष्य अच्छे कर्म से ही उच्च होता है।

कबीर की सामाजिक चेतना के आयाम

कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। छुआछूत, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार, पाखण्ड का बोलबाला था और हिन्दू–मुसलमान आपस में झगड़ते रहते थे । धार्मिक पाखण्ड अपनी चरम सीमा पर था। धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता के कारण समाज का सन्तुलन बिगड़ रहा था, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का बोलबाला था तथा सामाजिक विषमता बढ़ती जा रही थी। उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी जो समाज में व्याप्त इन बुराइयों पर निर्भीकता से प्रहार कर सके, धर्मों के अनुयायियों को बिना किसी भेदभाव के फटकार सके और सदाचार का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना करे। कबीर इन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । उल्लेखनीय है कि उनमें हिन्दु और इस्लाम की रुढ़ियों, संकीर्णताओं और कट्टरताओं के विरुद्ध

खड़े होने की जैसी दृढ़ता थी, वैसी ही सच को कहने की निर्भीकता भी थी। उन्होंने कहा था–

''साँच ही कहत और साँच ही गहत है,

काँच कू त्याग कर साँच लागा।

कहै कबीर यूँ भक्त निर्भय हुआ।

जन्म और मरन का मर्म भागा। 1

कबीर की सामाजिक चेतना या समाज सुधारक व्यक्तित्व पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि क्या मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई समस्याओं को धार्मिक तथा राजनीतिक समस्या से बिल्कुल अलग करके देखा जा सकता है। एक क्षण के लिए मध्यकालीन या कबीर कालीन समाज को दरकिनार करके अपने आधुनिक समाज को देख लिया जाए तो बात कुछ अधिक साफ ढंग से समझ में आ जायेगी। आज के समाज की अनेक समस्याओं में से सबसे बड़ी और प्रमुख समस्या है धार्मिक कट्टरपन। इसी धार्मिक कट्टरता या साम्प्रदायिकता के कारण एक आदमी दूसरे आदमी के खून का प्यासा बन जाता है जिसके कारण समाज में व्यक्तियों का सह अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता ह जो सामाजिक संगठन की मूलभूत आवश्यकता है।

जहाँ तक कबीर के समाज सुधारक होने का प्रश्न है, यह निर्विवाद सत्य है कि वे बुद्ध, गाँधी, अम्बेडकर इत्यादि क्रांतिकारी समाज सुधारकों की परम्परा में शामिल होते हैं। एक महान समाज सुधारक की मूल पहचान यह है कि वह अपने युग की विसंगतियों की पहचान करें, एक मौलिक व समयानुकूल जीवन दृष्टि प्रस्तावित करें और इस जीवन दृष्टि को स्थापित करने के लिए हर प्रकार के भय और लालच से मुक्त होकर दृढ़तापूर्वक संघर्ष करें। कबीर के व्यक्तित्व का विश्लेषण करें तो हम समझ सकते हैं कि वे जिस सामंतवादी युग में थे वह

सामाजिक दृष्टि से अपकर्ष का काल था। विलासिता जैसे मूल्य समाज में फैले हुए थे। नारी को भोग की वस्तु माना जाता था। वर्णव्यवस्था और साम्प्रदायिकता ने मानव समाज को खंडित किया था। धर्म का आडम्बरकारी रूप वास्तविक धार्मिकता को निगल चुका था और भाषा से लेकर जीवन शैली तक एक प्रकार का आभिजात्य उच्च वर्गों की मानसिकता में बैठा हुआ था। ऐसे समय में कबीर ने मानव मात्र की एकता का सवाल उठाया और स्पष्ट घोषणा की कि ''साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय। वे समाज के प्रति अति संवेदनशीलता से भरे रहे क्योंकि सुखिया संसार खाता और सोता रहा जबकि संसार की वास्तविकता समझकर दुखिया कबीर जागते और रोते रहे। यह निम्नलिखित पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है–

''सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै ।

दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै। 2

कबीरदास का समाज द□ान

कबीर के आविर्भाव से पूर्व उत्तर भारत में अनेक धार्मिक साधनाएं प्रचलन में थीं। सर्वाधिक प्रभावनाथपंथी योगियों का था। दक्षिण में उमड़ कर वैष्णव भक्ति–धारा उत्तर भारत में प्रवाहित हो चुकी थी।कट्टर एकेश्वरवादी इस्लाम निम्नवर्गीय जनता को राजनैतिक और सामाजिक कारणों से प्रभावित कर रहाथा। सूफी साधक अपनी उदारता और सात्विकता के कारण भारतीय जनमानस के निकट आ गए थे। शैवऔर शाक्त मतों का भी प्रचार हो रहा था, पर उसकी गतिमयता समाप्त हो चुकी थी। विशेषकर शाक्त(शक्ति के उपासक) साधना तांत्रिक पद्धति को स्वोकार करने के कारण गुह्य हो गयी थी। उनके अतिरिक्तअनेक प्रकार के तपस्वी और साधक अपने–अपने रंग में मस्त थे और विविध साधनाओं में लीन कबीरविलक्षण प्रतिभा को लेकर उत्पन्न हुए। ''युगावतारी शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग प्रवर्तककी दृढ़ता उनमें वर्तमान थी, इसीलिए वे युग–प्रवर्तन कर सके थे।''1

दो धार्मिक आन्दोलनों की चर्चा आवश्यक है। एक धारा पश्चिम से आई यह सूफी साधना में विश्वासकरती थी। मजहबी मुसलमान हिन्दू धर्म के मर्म पर चोट नहीं कर पाए थे। उन्होंने उनके वाह्य शरीर मात्रको विक्षुब्ध किया था, परन्तु सूफी भारतीय साधना के अविरोधी थे। उनका उदारतापूर्ण प्रेम व्यवहार भारतीयजनता का दिल जीत रहा था। फिर भी ये आचार प्रधान भारतीय समाज को आकृष्ट नहीं कर सके। उनकातालमेल आचार प्रधान हिन्दू धर्म साथ नहीं हो पाया बौद्ध संघ के अनुकरण पर प्रतिष्ठित विपुल वैराग्य केभार को न सूफी मतवाद और न योगमार्गीय निर्गुण परम तत्व की साधना ही वहन कर सकी। देश में पहलीबार वर्णाश्रम व्यवस्था को एक अननुभूतपूर्व विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ा।2

अब तक वर्ण व्यवस्थाका कोई विरोधी नहीं था। कोई प्रतिद्वन्द्वी नही ं था। आचारभ्रष्ट व्यक्ति समाज से बहिष्कृत कर दिया जाताथा और वे एक नई जाति की रचना कर लेते थे। फिर उसके सामने एक जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी आया, जोप्रत्येक जाति और व्यक्ति को अंगीकार करने को तैयार था परन्तु उसकी एक शर्त थी कि वह उसके विशेषप्रकार के धर्ममत को स्वीकार कर ले। समाज से दंडित व्यक्ति वहां शरण पा सकता था। उसकी इच्छा मात्रसे उसे एक सुस ंघटित समाज का आश्रय मिल सकता था ऐसे ही समय में दक्षिण से वेदान्त प्रभावित भक्तिका आगमन हुआ, जो इस विशाल भारतीय महाद्वीप के इस छोर से उस छोर तक फैल गया।3आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है–''इसने दो रूपों मे आत्म प्रकाश किया। पौराणिक अवतारों का केन्द्र सगुण उपासना के रूप में और निर्गुण परब्रह्म जो योगियों का ध्येय था, उसे केन्द्र करके निर्गुण प्रेमभक्ति की साधना के रूप में। पहली साधना ने हिन्दू जाति की वाह ्याचार की शुष्कता को आंतरिक प्रेम से सींच कर रसमय बनाया और दूसरी साधना ने वाह्याचार की शुष्कता को ही दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने समझौता किया, दूसरी ने विद्रोह का, एक ने शास्त्र का सहारा लिया, दूसरी ने अनुभव का। एक ने श्रद्धा का पथ प्रदर्शक माना, दूसरी ने ज्ञान को। एक ने सगुण भगवान को अपनाया दूसरी ने निर्गुण भगवान को। पर प्रेम दोनों का ही मार्ग था, सूखा ज्ञान दोनों को अप्रिय था, केवल वाह्याचार दोनों को सम्मत नहीं थे, आंतरिक प्रेम–निवेदन दोनों को अभीष्ट था, अहैतुक भक्ति दोनों को

काम्य थी, बिना शर्त के भगवान के प्रति आत्म–समर्पण दोनों के प्रिय साधन थे।इन बातों में दोनों एक थे। एक प्रधान भेद यह था कि सगुण भाव से भजन करने वाले भक्त भगवान को दूर से देखने में रस पाते रहे, जबकि निर्गुण भाव से भजन करने वाले भक्त अपने आप में रमे हुए भगवान को ही परम काम्य मानते थ। स्पष्ट ह कि विद्रोह, अनुभव, ज्ञान निर्गुण का रास्ता अपनाने वाले कबीर थे। परन्तु प्रेम तत्व दोनों मे समान था। तुलसी के राम प्रेम के प्यारे हैं। उन्हें जानना हो ता प्रेम कीजिए। कबीर प्रेम मार्ग के सच्चे पथिक ह। वे उस हृदय को श्मशान मानते हैं जहां प्रेम नहीं है। विरह नहीं ह। तत्त्वतः प्रेम ही वही अमृत है, जो सबको मिलाता है। जोड़ता है। एक करता है। चरित्र को निर्मल–पावन बनाता है। समाज में अव्यवस्था साम्प्रदायिकता, भेद–भाव, विषमता, स्वार्थ आदि का कारण है प्रेम का अभाव। जो प्रेम करेगा, वह उदात्त होगा। उसका चरित निर्मल होगा वहां भेद न रहेगा। अभेद दृष्टि का सम्यक् विकास होगा। इसलिए कबीर ने प्रेम पर बल दिया। प्रेम के लिए शर्त रखी आत्मबलिदान। अहंकार का त्याग। जब तक अहंकार है प्रेम नहीं मिल सकता, भेद बुद्धि बनी रहेगी। इसलिए कबीर अहं को इदं में मिलाने को बात करते हैं। मान एवं प्रेम को साथ–साथ चलते देखना असंभव है, जैसे एक म्यान में दा तलवार का होना। भक्ति प्रेम से ही मिल सकती है। प्रेम हो तो हृदय शुद्ध हो जाता है। वहां कोई विकार नही ं रहता। वह ऐसा पात्र बन जाता है, जहा ं परमात्मा की प्रतीति हो। भक्ति के आदर्श की द्विधाहीन भाषा में घोषणा करते हुए कबीर प्रेम के बिना भक्ति को ''उदरपूर्ति का कारण, व्यर्थ जन्म गंवाना और दंभ विचार कहते हैं।

उपसंहार

कबीर की समाज–सापेक्षता और उनकी सामाजिक चेतना का स्पष्ट प्रमाण इससे मिलता है कि वेसमाज की पीड़ा को जानते थे। उनकी शक्ति सीमा को पहचानते थे और एक मात्र रामबाण प्रेम को हीमानते थे।कबीर ने अनेक बार इस तथ्य की पुष्टि की है कि इस्लाम का खुदा भी निराकार है और भारतीयचिंतन का सार निरपेक्ष सत्ता भी निराकार है। परन्तु जिज्ञासा की जितनी, तुष्टि, तर्क की कसौटी पर खरोहिन्दू धर्म की परम सत्ता उतरती है, उतना इस्लाम

का खुदा नहीं।कबीर का मूल उद्देश्य भारत राष्ट्र की रक्षा था। कारण भारतीय राष्ट्रीयता हिन्दुत्व में निहित है औरसाथ ही साथ उन्हे हिन्दू धर्म की संकीर्णताओं का भी निराकरण करना था। लोगों को धर्म परिवर्तन सेरोकना भी था। वे सत्संग से इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि परम सत्ता प्राप्ति के लिए स ंसार का कोई धर्मप्रार्थना और कर्मकाण्ड के अलावा किसी दूसरे मार्ग की चर्चा नहीं करता। कर्म करते हुए विश्राम के क्षणों मेंकही भी ध्यान और योग में विरत होने की स्वतंत्रता एकमात्र हिन्दू दर्शन में ही उपलब्ध है।कबीर आजीवन सम्प्रदायवाद, बाह्याचार और वाह्य भेदभाव पर कठोरतम आघात करते रहे। सुन्नत,बांग और कुरबानी हो या हिंदूमत के तीर्थ, बलिदान, व्रत। उन्होंने कभी खंडन के लिए खंडन नहीं किया।उनका केन्द्रीय तत्व भक्ति था।सामाजिक वही है जो सहृदय है जो संवेदन ग्रहण कर सकता है। भक्त से बढ़ कर कोई सामाजिकनहीं हो पाता। उससे बढ़कर किसी में, पराई पीर की पहचान नहीं हो सकती। जब वह चराचर जगत मेंअपने ही प्रभु का प्रतिबिम्ब देखता है तो सारा भेद मिट जाता ह। समाज के पतन का कारण है चरित्र पतन। चरित्र रहे तो सामाजिक मूल्यों की रक्षा की जा सके।समाज को गिरने–टूटने से बचाया जा सके। उनके युग में समाजवाद नही ं था। पर नीति न्याय–धर्म कीमर्यादा थी। आज खुलेआम धर्म का स्थान अन्याय–अनीति ने ले लिया है। आज समाजवाद का आधार नधर्म है, न नैतिकता और न है पूरे समाज की उन्नति। परन्तु कबीर की भक्ति का सीधा सम्बन्धचरित्र–पालन से है। चरित्रहीन व्यक्ति ही समाज का शोषण करता है। गीता के अनुसार समाज का सच्चासेवक वही हो सकता है, जिसने मन पर अधिकार कर लिया है, कामनाओं से मुक्त हो गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ. श्यामसुन्दर दास मलिक कबीर ग्रन्थावलीएण्ड कम्पनी, जयपुर, 2016
- हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
- लालचन्द दूहन 'जिज्ञासु' कबीर वाणी सत्यज्ञाना मृत मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2014
- डॉ. रामचन्द्र तिवारी, कबीर मींमासा लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011

- सं. विवेकदास कबीर साहित्य की प्रांसगिकता कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी, 1978
- विजेन्द्र स्नातक कबीर साहित्यगार प्रकाशन, 2001
- डॉ. हरिहर प्रसाद गुप्त कबीर ग्रन्थावली सटीक जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2007
- शुकदेव सिंह कबीर बीजक साखी नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972
- डॉ. सरनाम सिंह शर्मा कबीर व्यक्तित्व–कृतित्व एवं सिद्धान्त भारतीय शोध संस्थान, गुलाबपुरा, 1966
- परशुराम चतुर्वेदी कबीर साहित्य की परख भारती भण्डार, प्र॰याग सं. 2011 वि
- डॉ. जयेदव सिंह कबीर वाड़्मय (खण्ड 1) नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004
- डॉ. नजीर मुहम्मद कबीर के काव्य रूप भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीग 1964
- डा. वासुदेव सिंह कबीर काव्य कोश राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
- डॉ. गुरनाम कौर बेदी कबीर चिंतजनया सन्दर्भ निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1996
- डॉ. शिवाजी नामदेव देवारे कबीर दास दृष्टि और सृष्टि गरिमा प्रकाशन, कानपुर,2004
- कबीर ओर कबीर पंथ केदारनाथ द्विवेदी हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1965
- दर्शन उर्वशी सूरती कबीर जीवन और लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2008